

पूज्य श्री सोगानीजी की १११ वीं जन्मजयंती पर कोटीकोटी वंदन  
पुरुषार्थमूर्ति पूज्य निहालचंद्रजी सोगानीजी के विषय में  
सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री के प्रमोदपूर्ण हृदयोद्गार!



उनकी जो सत्संगकी भावना, उपकारी सत्पुरुषके प्रति भक्ति, उनकी जो गृहस्थादि दशामें उदासीनता, और उनकी जो दृष्टिकी, दृष्टि में तत्त्व की पकड़-ये चार पहलू उनके वचनोंमेंसे बहुत अच्छी तरह प्रदर्शित होते हैं! चारोंके चारों पहलू इतनी अच्छी तरह प्रदर्शित होते हैं कि वे कैसे आत्मा थे वह तुरंत पता चल जाये ऐसी बात है। चारों ओर से यदि विचार किया जाय तो उनके शब्ददेह परसे उनके आत्मा का सीधा मूल्यांकन हो जाये ऐसा है। ऐसा सुंदर विषय है।

(-पूज्य भाईश्री शशीभाई)

# स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४८: अंक-२९३, वर्ष-२४, मई-२०२२

आषाढ़ कृष्ण १३, शनिवार, दि. १६-७-१९६६, योगसार पर  
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, गाथा-९०, प्रवचन-३६

परमात्मप्रकाश में दृष्टान्त आया था न? बेलड़ी का दृष्टान्त आया है। बेल कहते हैं? लता। जहाँ तक बाँस है, वहाँ तक बेल चलती है, फिर नहीं चलती तो उसकी ताकत नहीं है - ऐसा नहीं है, बाँस है, वहाँ तक चली फिर ऐसी की ऐसी ऊपर चढ़ती है। इसी प्रकार भगवान ज्ञान में लोकालोक का मण्डप इतना दिखता है, इसलिए शक्ति इतनी है - ऐसा नहीं है। भगवान! उस स्वभाव की मर्यादा नहीं है। आहा...हा...! स्वभाव किसे कहते हैं? परमाणुओं का स्वभाव किसे कहते हैं? ओहो...हो...! एक समय में परमाणु एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में गति करता है, दूसरे समय में चौदह ब्रह्माण्ड गति करता है - कारण क्या? कारण क्या? द्रव्य-गुण कारण है? वे तो त्रिकाल पड़े हैं। काल कारण है? काल करणा लिखा है, पंचास्तिकाय में लिखा है - काल करणा... पुद्गल और जीव को पुद्गल करणा... यह हो। लाओ सिद्धान्त! एक रजकण परमाणु पॉइन्ट एक समय में इतना जाता है। दूसरे समय चौदह ब्रह्माण्ड चला जाए कारण कौन? कारण क्या, वह पर्याय का स्वतः स्वभाव है। द्रव्य-गुण के कारण नहीं। द्रव्य-गुण तो त्रिकाल पड़े हैं। पहले भी एक समय चला तब द्रव्य-गुण पड़े हैं, काल तो निमित्त है। काल करा देता है उसे? क्या है? भगवान! स्वभाव की चीज ही ऐसी है।

पंचास्तिकाय में कहा है - धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय लोकपर्यन्त है। फिर आकाश है, लोकस्वभाव - ऐसा आया है। लोक का स्वभाव सुननेवाले को भगवान ने ऐसा कहा है। लोक का स्वभाव, आता है या नहीं? लोक स्वभाव आता है। आचार्यों ने तो बहुत डाला है, बहुत स्पष्ट किया है, ओ...हो...! कारण क्या! लाओ, बताओ। एक परमाणु दूसरे समय में चौदह ब्रह्माण्ड जाता है, पहले नीचे हो एकदम तल में, हाँ! सातवें नरक में और वहाँ से एक प्रदेश ऐसा ऊँचा आवे, बस! इतना। एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में, दूसरे समय में वहाँ से ठेठ सिद्ध (शिला तक जाता है)। कारण कौन? कारण निकालो? कोई कारण बताओ? न्याय से तो विचार करना पड़ेगा या नहीं?

मुमुक्षु : उस समय का काल बलवान।

उत्तर : काल क्या बलवान? ऐ... पण्डितजी! भगवान! यह स्वभाव अचिन्त्यता है प्रभु! जड़ की एक समय की अचिन्त्यता ऐसी, तो आत्मा के एक समय के ज्ञान की पर्याय की अचिन्त्यता की क्या बात करना?

मुमुक्षु : ऐसा माने तो निमित्त का ज़ोर चला जाता है।

उत्तर : भाई! निमित्त है, कौन इनकार करता है? परन्तु निमित्त, निमित्त के घर में है। क्या यहाँ घुस गया है? और उसके कारण यह पर्याय है? निमित्त पहले नहीं

था? फिर निमित्त में क्या हुआ? एक समय में चौदह ब्रह्माण्ड चला तो कारण क्या? लाओ, बताओ? निमित्त कहो तो निमित्त कौन? निमित्त तो सदा एक समान पड़ा है। भगवान! ऐसा नहीं होता। उस स्वभाव की महिमा आनी चाहिए। ओ...हो...! जिसे ज्ञान नहीं, और दूसरे समय में एक समय में चौदह ब्रह्माण्ड चला जाए। समझे? गति की उग्रता का अपना स्वभाव है।

यह तो केवलज्ञान की एक समय की पर्याय किसे नहीं जाने? आहा...हा...! एक समय की, हाँ! परमाणु एक समय में ऐसा चला जाता है। यह तो तीन काल-तीन लोक अनन्तगुना हो (तो भी जाने)।

हाँ! वे कल कहते थे। देखो! एक समय के इतने भाग पड़ गये, ऐसा रतनचन्द्रजी ने कहा, चौदह ब्रह्माण्ड का चला न? पण्डितजी! तो एक समय में इतने भाग पड़े। अरे...! भगवान भाग नहीं। अरे भाई! यह तो उसका एक समय की गति की उग्रता का स्वभाव है, समय का क्या भाग पड़े? समय का भाग पड़ता है? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा 'परद्रव्यों से और परभावों से भिन्न शुद्ध द्रव्य जाने और शंकारहित विश्वास में लावे, वही निश्चयसम्यग्दर्शन है।' यह कोई बाहर की चीज है? उसका आत्मा स्वीकार करना चाहिए न! मानो, परन्तु किस प्रकार मानना? खरगोश के सींग मानो, परन्तु वह है ही नहीं किस प्रकार माने? जो चीज है, उसका आश्रय करके यथार्थ निःशंक हुआ ओ...हो...! यह भगवान आत्मा अनन्त केवलज्ञान का पेट पड़ा है, उसकी पर्याय तीन काल-तीन लोक को जानती है, उससे भी अनन्तगुना जाने ऐसी ऐसी अनन्तगुनी पर्याय

एक ज्ञानगुण में पड़ी है - ऐसे स्वद्रव्य की दृष्टि हुई तो कहते हैं कि उसका नाम निश्चय सम्यग्दर्शन है, वह चौथे से होता है। अभी कहते हैं कि चौथे, पाँचवें, छठवें में व्यवहार सम्यग्दर्शन होता है, बाकी नहीं। अरे! भगवान चौथे से है, प्रभु! तू क्या करता है?

मुमुक्षु : आठ कर्म जोर करते हैं।

उत्तर : जोर-बोर उसके घर रहा। कर्म का जोर उसके घर, इसके घर में जोर घुस जाता है? समझ में आया?

'तीन लोक की सम्पत्ति सम्यग्दर्शन के लाभ

के सामने कुछ हिसाब में नहीं है।' तीन लोक की सम्पत्ति क्या, धूल है। समझे? एक समय में जानने योग्य है, आदर करने योग्य कहाँ? तीन लोक की सम्पत्ति है? 'एक नीच चाण्डाल पुरुष यदि सम्यग्दर्शनसहित हो वह पूजनीय देव है...' पण्डितजी! रत्नकरणश्रावकाचार में आया है न? भस्म से ढँकी हुई अग्नि... भस्म से ढँकी हुई अग्नि है, अग्नि है। ज्वाजल्यमान अग्नि है। आहा...हा...! चाण्डाल देव है। सम्यग्दर्शन की क्या महिमा है, इसे लोग नहीं समझते। द्रव्य की तो बात ही क्या करना! ओ...हो...! ऐसी सम्यग्दर्शन की पर्याय जिसमें अनन्त पड़ी है। सम्यग्दर्शन पर्याय प्रगट हुई तो अनन्त... अनन्त... अनन्त... सदा रहती है या नहीं? सादि अनन्त; भले वह पर्याय नहीं परन्तु सादि अनन्त पर्याय है, वे सभी अन्दर श्रद्धा में पड़ी हैं। द्रव्य की तो बात क्या करना! कहते हैं कि सम्यग्दर्शन की महिमा... वह पूजनीय देव, चाण्डाल पुरुष भी... ओहो...! अल्प काल में वह चारित्र धारण करेगा, चाण्डाल भी मुक्ति प्राप्त करेगा।

'परन्तु एक नौवें ग्रैवेयक का अहमिन्द्र सम्यग्दर्शन के बिना पूज्य नहीं है।' नौवहीं ग्रैवेयक



चला जाए इतनी क्रिया पालन करे, चमड़ी उतारकर नमक छिड़क दे (तो भी) क्रोध न करे। दूसरे देव लोक की इन्द्राणी आवे तो भी विचलित न हो। उसमें क्या हुआ? स्वद्रव्य की दृष्टि हुए बिना नौवें प्रैवेयक का देव भी पूज्य नहीं है। नौवें प्रैवेयक, ३१ सागर, अहमिन्द्र सब समान। अहं... अहं... अहं... इन्द्र सब समान, परन्तु वे पूज्य नहीं। आहा...हा...! भाई! भगवान आत्मा की महिमा है। आत्मा की महिमा की जहाँ दृष्टि हुई, उसकी क्या महिमा कहना!

‘एक गृहस्थ सम्यग्दर्शनसहित होवे तो वह ऐसे मुनि से उत्तम है...’ यह तो आया न? गृहस्थोः बस! यह, ‘मिथ्यादर्शनसहित व्यवहार चारित्र का पालन करता है। सम्यग्दर्शनसहित नरक का वास भी उत्तम है, सम्यग्दर्शनरहित स्वर्ग का वास भी भला नहीं है।’ आहा...हा...! पहला सम्यग्दर्शन अर्थात् द्रव्य-मोक्ष, द्रव्य का मोक्ष, मोक्ष हो गया। समझे? अमृतचन्द्राचार्यदेव के कलश में ‘मुक्तएव’ आता है। सुन तो सही! परन्तु भावमोक्ष की पर्याय थोड़ी बाकी है।

‘सम्यग्दर्शन का इतना माहात्म्य इसलिए कहा गया है कि उसकी प्राप्ति होने पर अनादि काल का अन्धकार मिट जाता है और प्रकाश हो जाता है।’ सब आगम भेद सु उर वसै.... समस्त आगम में क्या कहा? वह उसके ज्ञान में आ जाता है। उसे बाहर ढूँढना नहीं पड़ता। समस्त आगम का रहस्य-चौदह पूर्व में बारह अंग में क्या कहना है? कैसे है? यह सम्यग्दर्शन में आ जाता है। ‘जो संसार प्रिय लगता था, वह अब त्यागने योग्य भासित होता है।’ अन्धकार गया, प्रकाश हुआ; संसार आदरणीय था, वह अब छोड़ने योग्य हो गया। पूरा संसार, पूरा संसार जिस भाव से तीर्थकर गोत्र बाँधे, वह भाव भी हेय है।

‘सांसारिक इन्द्रियसुख ग्रहण करने योग्य भासित होता था, वह त्यागनेयोग्य भासित होता है।’ आहा...हा...! अनादि मिथ्यात्व में इन्द्रिय के

सुख में रुचि थी, वह सब हेय हो गया। अपना अतीन्द्रिय आनन्द - सुख अपने में है ऐसी रुचि में सम्पूर्ण आत्मा का आदर हो गया, तीन लोक के इन्द्रियसुख का दृष्टि में त्याग हो गया। समझ में आया? ‘जिस अतीन्द्रिय स्वाधीनसुख का पता नहीं था, उसका पता लग जाता है और उसका स्वाद भी आने लगता है।’ सर्वगुणांश वह सम्यक्त्व। अनन्त गुण का पिण्ड वह द्रव्य और द्रव्य की रुचि से जहाँ अन्तर परिणामन हुआ तो सर्व गुणों का अंश व्यक्तिरूप से प्रगट न हो तो सर्वगुणांश, सर्व गुण के धारक द्रव्य की दृष्टि हुई कहाँ से? समझ में आया? सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट हुई, आनन्द की पर्याय प्रगट हुई, स्वरूपाचरण की प्रगट हुई, स्वच्छता की प्रगट हुई, प्रभुता की प्रगट हुई, और स्वरूप के कर्ता-कर्म-करण का अंश भी प्रगट हुआ। समस्त गुणों का अंश प्रगट हुआ।

‘सम्यग्दृष्टि को सच्चा ज्ञान होता है कि मेरा आत्मद्रव्य परमशुद्ध ज्ञातादृष्टा परमात्मस्वरूप है, मेरी सम्पत्ति मेरे ही अविनाशी ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यादि गुण हैं।’ (अज्ञानी जीव) इस धूल को सम्पत्ति मानते हैं, यह मिल और मालिक धूल और फूल, मूढ है। मालिक किसका? परचीज का मालिक कहाँ से हुआ? सहजात्मस्वरूप, सहजात्मस्वरूप चैतन्यस्वामी... सहजात्मस्वरूप चैतन्यस्वामी।

मुमुक्षु : मिल मालिक मूढ होगा?

उत्तर : माने वह मूढ ही है और क्या है? मूढ को सींग उगते हैं? परवस्तु का स्वामी तू कहाँ से हुआ? एक चीज के दो स्वामी? उसकी पर्याय और द्रव्य-गुण का वह स्वामी और तू भी स्वामी, एक चीज के दो स्वामी कहाँ से आये?

मुमुक्षु : मिल मालिक बड़े कहलाते हैं न?

उत्तर : धूल भी नहीं। बड़ा किसे कहना? यहाँ तो सम्यग्दर्शन-चैतन्य का स्वामी हुआ, वह बड़ा हुआ। ए... मलूकचन्दभाई! तुम्हारे दो करोड़ और तीन करोड़ का कुछ नहीं।

मुमुक्षु : हमारे लिए गिनती है, आपके लिए नहीं।

उत्तर : धूल में भी वहाँ गिनती नहीं है, सब दुःख का विस्तार है।

‘मेरा अहंभाव अब मेरे आत्मा में है और ममकारभाव मेरे ही गुणों में है...’ मैं आत्मा और गुण मेरे... ऐसा। यह गुण मेरे, दूसरा कुछ मेरा नहीं है। ‘पहले में कर्मजनित अपनी अवस्थाओं को मेरा मानता था कि मैं नारकी हूँ, तिर्यंच हूँ, मनुष्य हूँ, देव हूँ, सुन्दर हूँ...’ ये सब मान्यता चली गयी। ‘रोगी हूँ, निरोगी हूँ, क्रोधी हूँ...’ सुन्दर हूँ। यह सुन्दर तो जड़ की दशा है, तू सुन्दर कहाँ से आया? मैं वक्ता हूँ, वक्ता जड़ की पर्याय है, वक्ता कहाँ से हुआ? समझ में आया? सबका अभिमान चला गया। मैं वक्ता हूँ, दो घण्टे ठीक से बोल सकता हूँ, हाँ! भगवान तेरे पास वाणी है? तेरे पास विकल्प भी नहीं तो वाणी कहाँ से आयी? वक्ता तू है? मूढ़ है। ऐसी दृष्टि समाप्त हो गयी। मैं तो वक्ता भी नहीं हूँ और मौन भी नहीं हूँ, वह तो जड़ की चीज है। समझ में आया?

निरोगी, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, स्त्री, पुरुष, नपुंसक, देह की (स्थिति है), मैं कहाँ हूँ। भयवान, दुःखी, सुखी, पुण्य का कर्ता, पाप का कर्ता, ... लो! सब चला गया। एक चैतन्य रवि-सूर्य उगा, चैतन्य रवि सूर्य सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ सब अन्धकार चला गया। ज़रा राग है, शुभभाव, तीर्थकर गोत्र बाँधे उसका तो कर्ता होता है न? सम्यग्दृष्टि को ही ऐसा राग आता है परन्तु वह राग का कर्ता नहीं है, आ जाता है, बाँध जाता है। परोपकारी हूँ - अज्ञानी ऐसा मानता है। मैं परोपकारी हूँ। कौन परोपकारी है? तू क्या दूसरे का कुछ कर सकता है? दानी हूँ, तपस्वी हूँ, तपस्या करता है, शरीर में बहुत तपस्या की, विद्वान हूँ, लो! इतना ज्ञान है कि हजारों शास्त्र हमें पानी के पूर की तरह याद है। पानी का पूर चलता है न, ऐसे... ऐसे...? उसमें क्या हुआ? भगवान! वह तो बाहर की सम्पत्ति है। विद्वान हूँ - यह दृष्टि तो मूढ़ है। आहा...हा...! मूर्ख हूँ और विद्वान हूँ, दोनों पर्याय का धर्म है; आत्मा को क्या है? ‘ब्रती हूँ...’ लो! एक समय की पर्याय ब्रती

हुई, उसे अपनी मानता है। ‘श्रावक हूँ, मुनि हूँ...’ यह भी वर्तमान पर्याय का अभिमान है। ‘राजा हूँ, प्रधान हूँ, इसी प्रकार परवस्तुओं को अपनी मानकर ममता करता था कि मेरा धन है, खेत है, मकान है, गाँव है, राज्य है, मेरे वस्त्र हैं, आभूषण हैं...’ इत्यादि बहुत बात ली है। ‘ऐसे अहंकार-ममकार में अन्ध होकर रात-दिन कर्मजनित संयोगों में ही क्रीड़ा किया करता था।’ समझ में आया? ‘इष्ट का ग्रहण और अनिष्ट के त्याग में उद्यमी था...’ कहो, अनुकूल होवे तो ठीक, प्रतिकूल होवे तो अठीक - ऐसी दृष्टि मिथ्यात्व में थी। सम्यग्दर्शन में तो अनुकूल ठीक और प्रतिकूल अठीक - ऐसा कुछ है ही नहीं। कितना त्याग हो गया - ऐसा कहते हैं। सम्यग्दृष्टि सम्पूर्ण संसार का सन्यस्त है। आ गया न अपने-सम्यग्दृष्टि सन्यस्त है, वास्तविक सन्यस्त वह है। राग व्यवहार भी आदरणीय नहीं, पर आदरणीय नहीं, यह सबका त्याग हो गया। (इसलिए) सन्यस्त वह है। अद्भुत बात, भाई! जिसका आदर नहीं था, उसका आदर हुआ, जिसका आदर था, उसका ज्ञान हो गया, ज्ञेय है, बस! गुलाट खा गयी, दृष्टि गुलाट खा गयी। उसका माहात्म्य कौन करे? समझ में आया?

‘अज्ञान का नाश होते ही सम्यग्दृष्टि को परभावों में अहंकार और पर पदार्थों में ममकार बिल्कुल दूर हो जाता है।’ लो! ‘जब तक वह घर में रहता है, तब तक कर्म के उदय को उदय मानकर गृहस्थ के योग्य सब लौकिक क्रिया को आत्मा के कर्तव्य से भिन्न जानता है...’ यह रागादि, शरीरादि क्रिया मेरी नहीं है। ‘उसमें लिप्त नहीं हो जाता, अन्दर में वैरागी रहता है।’ कहो, समझ में आया? ‘सदा भेदविज्ञान द्वारा अपने शुद्ध आत्मा को भिन्न ध्याता है...’ धीरे-धीरे निर्मल होकर, साधु होकर केवलज्ञान को प्राप्त करता है।

‘सम्यक्त्व के समान कोई मित्र नहीं है, (प्रवचन का शेष अंश पृष्ठ सं.१६ पर)



पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार ग्रंथके वचनामृत-२६३ पर भाववाही प्रवचन, दि. ३-६-१९८३, प्रवचन क्रमांक-११९ (विषय : मार्गदर्शन)

प्रश्न :- आत्मा परमें तो कोई हेर-फेर नहीं कर सकता-यह तो ठीक है पर क्या स्वयंकी पर्यायोंमें भी हेर-फेर करना उसके अधीन नहीं?

उत्तर :- अरे भाई! जहाँ द्रव्यका निर्णय किया वहाँ वर्तमान पर्याय स्वयं ही द्रव्यमें समाहित हो गई

तो फिर तुझे किसे बदलना है? जब पर्याय द्रव्यमें अंतर्मुख हो गई तब यह पर्याय क्रमशः निर्मलरूप ही परिणत होती रहती है और शान्ति बढ़ती जाती है। इस प्रकार पर्याय ही जब द्रव्यमें अन्तर्मग्न हो गई तब उसे बदलनेकी बात कैसी? वह पर्याय स्वयं ही द्रव्यके आधीन आ गई है।

पर्याय आयेगी ही कहाँसे?-द्रव्यमेंसे-अतः जब सम्पूर्ण द्रव्यको ही वशमें कर लिया है, (श्रद्धा-ज्ञानमें स्वीकार कर लिया) तब पर्याय वशमें आ ही गई; तात्पर्य यह है कि द्रव्यके आश्रयसे पर्याय सम्यक् और निर्मल रूपसे ही परिणमित होने लगी। जब स्वभाव निर्णित हुआ तब ही मिथ्याज्ञानका नाश होकर सम्यक्ज्ञान हुआ, मिथ्याश्रद्धा पलट कर सम्यग्दर्शन हुआ। इस प्रकार पर्याय निर्मल होने लगी-यह भी वस्तुका धर्म है। वस्तुस्वभाव बदला नहीं और पर्यायोंकी क्रम-धारा टूटी नहीं। द्रव्यके ऐसे-ऐसे स्वभावकी स्वीकृतिमें ही पर्यायकी निर्मल धाराका जन्म हुआ और ज्ञानादिरूप अनन्त पुरुषार्थ उसीमें समाविष्ट है।

स्व या पर-जब किसी द्रव्य, किसी गुण व किसी पर्यायमें हेर-फेर करनेकी बुद्धि न रही तब ज्ञान-ज्ञानमें ही जम गया, अर्थात् मात्र वीतरागी ज्ञाता-भाव ही रह गया-ऐसे साधकको अल्पकालमें मुक्ति होगी ही। बस! ज्ञानमें ज्ञातादृष्टा रूप रहना-यही स्वरूप है-यही सबका सार है। यह न्तर रहस्य जिसके खयालमें न आए उसे कहीं न कहीं, परमें अथवा पर्यायमें-हेर-फेर करनेकी बुद्धि बनी रहती है। ज्ञाता-भावसे च्युत होकर कहीं भी हेर-फेर करनेकी बुद्धि मिथ्याबुद्धि है। २६३.

पृष्ठ-४७, २६३ नंबरका वचनमृत है। प्रश्न उठाया है कि 'आत्मा परमें तो कोई हेर-फेर नहीं कर सकता—यह तो ठीक है पर क्या स्वयंकी पर्यायोंमें भी हेर-फेर करना उसके अधीन नहीं?' प्रश्नकार ने यहाँ तक मान रखा है कि अन्य पदार्थों की अवस्था में हेर-फेर नहीं किया जा सकता, अन्य पदार्थ आत्मा के अधीन परिणामते नहीं। स्वयं की इच्छा, राग, द्वेष, मोह के परिणाम के वश होकर अन्य पदार्थों के कार्य किये नहीं जा सकते, यह बात तो अनुभव से भी खयाल में आती है। अनेक प्रकार के कार्य करने के परिणाम होने के बावजूद कार्य नहीं होने के प्रसंग बनते हैं। यह बात ठीक है। ... स्वीकृत है, ठीक है अर्थात् उसका स्वीकार आता है। 'पर क्या स्वयंकी पर्यायोंमें भी हेर-फेर करना उसके अधीन नहीं?' प्रश्न कहाँ से आता है? कि परिणाम को इच्छानुसार करना चाहे वैसे हो कि नहीं? मूल प्रश्न यहाँ है। स्वयं के परिणाम कोई जीव, कोई आत्मा अपनी इच्छा अनुसार करना चाहे तो कर सके ऐसा अपने आप पर, अपने परिणाम अपने अधीन है कि नहीं? ऐसा प्रश्न है।

अब यदि वास्तव में विचार करे कि एक समय पश्चात् कौन सा परिणाम आनेवाला है यह कोई जीव को मालूम नहीं है। ऐसा परिणाम वर्तता है, उसके बाद कौन सा परिणाम उत्पन्न होगा इसकी खबर है? यदि यह मालूम नहीं है तो ऐसा करना और वैसा करना, ऐसी इच्छा के अधीन होगा?

एक मनुष्य विचार करे कि फलाना विचार करना ही नहीं है। उसको उसके ही विचार आते हैं। ऐसा बनता है कि नहीं? निर्विकल्प सम्यग्दर्शन करना है इसलिये विकल्प करना ही नहीं। विकल्प नहीं करना यह भी एक विकल्प हुआ। इस प्रकार से जीव की इच्छा के अधीन, स्वयं की इच्छा के अधीन, इच्छारूप राग के अधीन, इच्छा यानी इच्छारूप राग के अधीन जीव के स्वयं के परिणाम नहीं है।

यहाँ प्रश्न इसलिये उत्पन्न होता है कि अपनी पर्यायों में हेर-फेर करना स्वयं के अधीन है या नहीं? तो कहते हैं कि स्वयं की पर्याय में हेर-फेर करना, यह राग के अधीन है या बिना राग के अधीन चाहिये? वास्तव

में तो पर्याय शुद्ध हो, पर्याय स्वस्थान में रहे यह पर्याय का यथास्थान है और ऐसा हो तो उसमें हेर-फेर नहीं करना चाहिये, उसमें फिर हेर-फेर करने का सवाल नहीं है, जरूरत नहीं है, आवश्यकता नहीं है। इतनी बात तो बराबर है और ऐसा होने का उपाय है और यह सहजरूप से हो सकता है यह बात यहाँ प्रश्न के उत्तर में यह विषय आयेगा।

परन्तु प्रश्न में जो बात है कि इच्छानुसार परिणाम में हेर-फेर हो सकता है या नहीं? नहीं हो सकता। स्वयं की इच्छानुसार स्वयं, अपनी इच्छा के अधीन बाकी के परिणाम कर सके ऐसा नहीं बन सकता। मन-वचन-काया के परिणाम तो नहीं कर सकता। क्योंकि वह तो परद्रव्य है। बोलना हो कुछ और बोला जाता है और कुछ। वहाँ लेकर मन-वचन-काया के और अन्य पदार्थों के परिणाम को नहीं कर सकता। परन्तु अपने में राग और इच्छा के अनुकूल भी परिणाम हो ऐसा भी परिणाम का राग का आधीनत्व सिद्धांत में नहीं है, वस्तु के सिद्धान्त में नहीं है अर्थात् वस्तु के स्वरूप में नहीं है। वस्तु के विज्ञान में यह नहीं है।

तो प्रश्न इतना रहता है कि पर्याय उसके योग्य स्थान में रहे ऐसा किया जा सकता है या नहीं? हाँ, ऐसा किया जा सकता है। वह हो सकता है। उसके लिये उसकी इच्छा और राग को पकड़कर रखना पड़े, इसके लिये उसकी इच्छा में रहना पड़े यह सवाल नहीं है। उसका उपाय दूसरे तरीके से है। यह विषय उत्तर में है।

**उत्तर :- अरे भाई! जहाँ द्रव्यका निर्णय किया वहाँ वर्तमान पर्याय स्वयं ही द्रव्य में समाहित हो गई...** अब क्या कहते हैं? कि तुझे तेरे परिणाम तेरे अधीन रहे ऐसा एक अभिप्राय है। इसके अनुसार यह प्रश्न उत्पन्न हुआ है कि परिणाम स्वयं के अधीन हो जाये तो सब बात ठीक हो जाये। यहाँ गुरुदेवश्री नीव की एक बात करते हैं कि तेरा स्वद्रव्य कैसा है? तेरा मूल स्वरूप कैसा है यह नक्की किये बिना तेरी एक भी बात सीधी नहीं उतरेगी। जब तक स्वयं का स्वरूप निश्चित नहीं होता तब तक कोई बात बराबर एक कदम भी, एक कार्य भी उसके योग्य हो यह बात अपनी बेभान अवस्था में स्वीकृत करने योग्य नहीं है।

यहाँ स्वयं को स्वयं के स्वरूप का बेभानपना है। ऐसे में उसे, ऐसा करना है और वैसा नहीं करना है, यह कर्तव्य है और यह अकर्तव्य है, यह बात योग्य विचारणावाली नहीं है, सुयोग्य विचारणावाली नहीं है। क्योंकि स्वयं का तो भान नहीं है कि स्वयं कौन है और कैसा है। अतः सर्व प्रथम ऐसा कहते हैं कि तेरे स्वस्वरूप को, स्वद्रव्य को, स्वयं की जाति को तू नक्की कर।

अब, जैसे ही यह स्वीकार करने जायेगा कि मैं ऐसा हूँ, मेरा स्वद्रव्य ऐसा है ऐसा श्रद्धान में, ज्ञान में ऐसा है ऐसा निश्चित होता है तब, वह जिस श्रद्धा-ज्ञान में स्वद्रव्य का श्रद्धान होता है वह पर्याय स्वयं स्वद्रव्य की ओर अंतर्मुख होकर उसको श्रद्धा-ज्ञान में लेती है, विषय करती है। तब तक वह विषय होता नहीं। अतः अपने आप पर्याय स्वस्थान में आ गई, ऐसा कहना है। पर्याय जहाँ स्वद्रव्य के सन्मुख हुई वहाँ वह पर्याय स्वयं निर्विकार हो गई और वह निर्विकार पर्याय हुई वही उसको करना था। उसे क्या करना था? कि राग-द्वेष और मोह एवं कोई दोष नहीं चाहिये, कषाय कलंक का अभाव करना है ऐसी जो इच्छा है उस इच्छा के अधीन यह परिणाम होनेवाले नहीं है, ऐसी इच्छा के अधीन ऐसे निर्दोष परिणाम नहीं होंगे, परन्तु दोषरहित जो स्वद्रव्य है, निर्दोष परमात्मा जो है उसे श्रद्धा-ज्ञान में लेने से, श्रद्धा-ज्ञान में लेनेवाली पर्याय भी निर्दोष होती है। यह उसने करनेयोग्य कर लिया। एकसाथ दो कार्य हुए। स्वयं के स्वरूप को श्रद्धा-ज्ञान में निश्चित करना भी हुआ और ऐसा निर्णय करने से, उसे जो कार्य करने की इच्छा उत्पन्न हुई कि मेरा परिणामन ऐसा निर्दोष होना चाहिये, वह भी हो गया। दोनों एकसाथ हो गये। यह यहाँ लिया है।

दूसरा एक प्रतिपक्ष लेते हैं, कि विकारी परिणाम में जैसे विकारी परिणाम करना चाहे वैसे होवे या नहीं होवे? इच्छानुसार होंगे कि नहीं? कि, नहीं होंगे। यह तो सबसे पहले ले लिया कि एक समय के बाद दूसरा परिणाम, प्रवर्तमान परिणाम के बाद दूसरे समय का भविष्य का तत्कालीन परिणाम कौन सा होगा यह मालूम नहीं है, फिर उत्तरोत्तर भविष्य में कैसे परिणाम होंगे यह भी मालूम नहीं है। जब, जिसकी कोई खबर

नहीं है उसका कंट्रोल अभी से करने का कोई सवाल नहीं है। और इस तरह परिणाम पर पकड़ जमाने जाये तो ऐसी पकड़ जमेगी नहीं, हो नहीं सकेगी। अतः न हो सके ऐसा कार्य जिसको करना है उसे मिथ्या बुद्धिपूर्वक कार्य करने का अभिप्राय है। उसकी वह बुद्धि मिथ्या है। अतः वह बात तू वहाँ छोड़ दे।

अब बात इतनी रही कि वह सविकार परिणाम इच्छानुसार नहीं किये जा सकते परन्तु निर्विकार परिणाम करने की इच्छा है तो वह तो इच्छानुसार कर सकते हैं या नहीं? तो इच्छानुसार करने का यहाँ सवाल नहीं है। ऐसा कार्य हो सकने योग्य है, कर सकने योग्य है परन्तु वह इच्छा अनुसार नहीं, इच्छा के अधीन नहीं। स्वयं के स्वद्रव्य को श्रद्धान में और ज्ञान में निश्चित करे, स्वयं के स्वरूप का निर्णय होने पर और स्वयं के स्वरूप का स्वीकार होने पर अपने आप परिणाम यथास्थान में निर्विकार हो जाते हैं कि जिस परिणाम में फिर उसको हेर-फेर करने की मिथ्याबुद्धि भी नहीं रहती है। दोनों एकसाथ होता है।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य भाईश्री :- जो निर्णय किया वह पुरुषार्थ सहित हुआ कि पुरुषार्थ रहित हुआ? अपने श्रद्धान ज्ञान में अपने स्वस्वरूप का निश्चय हुआ वह पुरुषार्थ सहित हुआ या पुरुषार्थ रहित हुआ? कि, पुरुषार्थ सहित हुआ। फिर पुरुषार्थ नहीं आने की बात नहीं रहती है।

एक बात यह खयाल में रखने जैसी है कि प्रतिसमय आत्मा में, प्रत्येक जीव में पुरुषार्थ परिणमित हो ही रहा है। कोई जीव पुरुषार्थ के परिणामन रहित कभी भी एक समयमात्र भी न हो ऐसा नहीं है। कोई भी जीव के लिये। अब, जो पुरुषार्थ उसे स्वयं को दुःख में और अहित में कार्य करता है वह उसका विपरीत पुरुषार्थ है, कुपुरुषार्थ है। और जो उसके आत्मिक सुख-शान्ति में कार्यगत हो वह पुरुषार्थ उसका सच्चा पुरुषार्थ, सुपुरुषार्थ है। अतः पुरुषार्थ की विपरीतता और अविपरीतता का विचार करना रहा। पुरुषार्थ करने, नहीं करने का तो विचार करना ही नहीं रहता।

किसी भी जीव को, पुरुषार्थ सम्बन्धित यदि



विचार किया जाये तो पुरुषार्थ नहीं करना या करना, यह प्रश्न अस्थान में है। क्योंकि आत्मा के गुणों में सर्व गुण सर्व काल परिणमनशील है। तो पुरुषार्थ जिसकी पर्याय है ऐसा वीर्यगुण भी सर्वकाल परिणमनशील है। छहों द्रव्यों में यह सामान्यगुण है। जड़ में जड़ की शक्ति है। चेतन में चेतन की शक्ति है। तो वह तो उसका गुण तो सर्व काल में परिणमता ही है। अतः जो परिणमित हो रहा है और जिसका परिणमन बंद नहीं किया जा सकता, उसे परिणमित करना या नहीं परिणमित करना यह प्रश्न अस्थान में है, यह प्रश्न तो रहता नहीं। अब सुलटा करने का प्रश्न है।

जो पर्याय श्रद्धा-ज्ञान की अंतर्मुख होने पर स्वयं के स्वद्रव्य को श्रद्धा के विषय में विषय करती है, ज्ञान से ज्ञान में विषय करती है, वह पर्याय स्वयं शुद्ध हो गई। फिर उस शुद्ध पर्याय में उसे क्या हेर-फेर करनी है? कि उसको फिर कोई हेर-फेर करने का भाव या इच्छा या अभिप्राय रहता नहीं। अतः स्वतः ऐसा कहते हैं कि 'जहाँ द्रव्यका निर्णय किया वहाँ वर्तमान पर्याय स्वयं ही द्रव्यमें समाहित हो गई...' वह पर्याय स्वयं ही द्रव्य में अंतर्मुख हुई है। अब पर्याय स्वयं ही अंतर्मुख हो गई, फिर किसे हेर-फेर करने का सवाल रहता है? फिर कोई हेर-फेर करने की बात ही नहीं रहती। यहाँ प्रश्न अपने आप समाप्त हो जाता है। अथवा अज्ञान से उत्पन्न हुआ जो पर्याय में हेर-फेर करने का प्रश्न, वस्तु के स्वरूपज्ञान के अभाव में उत्पन्न हुआ जो पर्याय में फेरफार करने का प्रश्न, वह स्वरूपज्ञान होने पर वह प्रश्न ही वहाँ खड़ा नहीं रहता। ऐसा है।

'जब पर्याय द्रव्यमें अंतर्मुख हो गई,...' अब जिसे परिणमन में अंतर्मुखता हो गई, वह क्या अनुभव करता है? वह अनुभव करता है कि परिणमन अंतर्मुख है। पर्याय प्रतिसमय निर्मलता में विकसित होती जाती है। अंतर्मुख मुड़ी हुई पर्याय है और प्रतिसमय निर्मलता में विकास करती रहती है, वर्धमान होती जाती है, शान्ति भी बढ़ती जाती है। 'इस प्रकार पर्याय ही जब द्रव्यमें अन्तर्मग्न हो गई तब उसे बदलनेकी बात कैसी?' जो पर्याय स्वरूप में लीन है और जिस स्वरूप लीनता के कारण शान्ति भी बढ़ती

जाती है, शुद्धता भी बढ़ती जाती है तब, जब ऐसा हो गया वहाँ अब उसमें हेर-फेर करने का सवाल नहीं रहता। ऐसी पर्याय को मिटाकर दूसरी करनी है, ऐसा तो वहाँ किसी को अभिप्राय या इच्छा होती नहीं। जो करनेयोग्य है, कर्तव्य है यानी करनेयोग्य है वह हो गया। कर्तव्य किया जा चुका। उसे कृतकृत्यपना कहने में आता है। कृत्य कृत। कृत यानी किया गया। जो करनेयोग्य है वह किया जा चुका, हो गया। फिर उसे करना ऐसी कोई बात उसमें बाकी नहीं रहती।

'तब उसे बदलनेकी बात कैसी?' कि वहाँ कुछ हेर-फेर करना ऐसा नहीं रहता। और 'वह पर्याय स्वयं ही द्रव्यके आधीन आ गई है।' परिणाम में विकारी उत्पत्ति होती नहीं है इसलिये वह परिणाम कंट्रोल में आ गये हैं ऐसा कहने में आता है। यह उसका उपलक्षण है, उसे उपलक्षण कहते हैं। कैसे? कि जो ज्ञान जागृत हो गया कि मैं ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ, चैतन्यस्वरूपी आत्मा हूँ उसे उसका स्वयं का परिणाम कंट्रोल के बाहर नहीं जाता। जागृत परिणमन में सम्यग्ज्ञानरूपी लगाम है। साधकजीव को आंशिक जो रागादि परिणाम होते हैं, पूर्णरूप से नहीं होते, आंशिक होते हैं वह भी उसके सम्यग्ज्ञानरूपी लगाम में है। सम्यग्ज्ञानी को, धर्मी को कदापि निर्गल परिणाम नहीं होते। निरंकुश, कंट्रोल रहित परिणाम नहीं होते। जैसे पागल मनुष्य को और सयाने मनुष्य को परिणाम चेष्टा में क्या अंतर है? कि पागलपन है उसे जो परिणाम होते हैं ऐसी चेष्टा होती है, उसका उसे खयाल नहीं रहता। सयाने मनुष्य को परिणाम होते हैं परन्तु उसे जागृति है कि यह मर्यादा है और यह मर्यादा नहीं है। तब वह मर्यादा में रहता है। क्योंकि मर्यादा का भान चुकता नहीं। वैसे ज्ञानी, 'मैं एक आत्मा हूँ, मेरी मर्यादा इतनी ही है' उसके भान में है। अतः उसे परद्रव्याश्रित परिणाम है वह कंट्रोल में रहता है, निर्गल परिणाम नहीं होते। यह उसकी सहज परिस्थिति है।

(२०:०० मिनट तक, प्रवचन का शेष अंश अगले अंकमें...)

**अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के,  
शिष्यरत्न पुरुषार्थमूर्ति पूज्य निहालचंद्रजी सोगानीजी  
सम्बन्धित प्रमोदपूर्ण हृदयोद्गार**

यह तो सुबह थोड़ा विचार आया था। भाई का - 'सोगानी' का! 'पर्याय मेरा ध्यान करो तो करो। मैं किसका करूँ?' आता है उसमें? आ..हा..हा...! 'सोगानी' थे, 'कलकत्ता'! 'निहालचंद्र सोगानी'! वह आये, बहुत वांचन था। (उनका) लड़का पैसेवाला है, बहुत पैसा है। ('सोगानी' ने) बहुत वांचन किया था, शास्त्र अभ्यास किया था। बहुत से साधु-जोगी को मिले थे, जैन के साधु को (मिले थे)। (फिर) वह आये (तो हमने) इतना कहा, प्रभु! यह राग का जो विकल्प उठता है न, उससे भगवान अंदर भिन्न है। आ..हा..हा...! ऐसे ही विचार में रातभर घोलन किया, (सुबह होते ही) निर्विकल्प ध्यान होकर सम्यग्दर्शन (लेकर) उठ गये। उसमें लिखा है। है? आज सबेरे याद आया था। (पुस्तक में) आगे लिखा है, नहीं तो जल्दी मिले भी नहीं।

(२७९ बोल है) '(अभिप्राय की) ज़रा-सी भूल,...' (यानी कि), राग मेरा है और पर्याय मेरी है, इतना भी हो तो बड़ी भूल है। 'पर्याय' ध्यान करनेवाली है,...' हिन्दी है। यह पर्याय जो वर्तमान ज्ञान की दशा है, वह ध्यान करनेवाली (है)। (अर्थात्) वह मेरा ध्यान करती है। मैं तो ध्रुव हूँ। आ..हा..हा...! 'पर्याय' ध्यान करनेवाली है,...' आ..हा..हा...! राग नहीं, शरीर नहीं, पर्याय ध्रुव नहीं। ध्रुव का ध्यान करनेवाली पर्याय है। अरे... अरे...! ऐसी बातें हैं ! कभी सुनी न हो। आ..हा...!

'पर्याय' ध्यान करनेवाली है, और 'मैं' तो ध्यान की विषयभूत वस्तु हूँ;...' पर्याय ध्यान करो परन्तु मैं तो पर्याय (का) जो ध्यान का विषय है वह मैं त्रिकाली वस्तु हूँ। आ..हा..हा...! 'पर्याय 'मेरा' ध्यान करती है, 'मैं' ध्यान करनेवाला नहीं हूँ।' आ..हा..हा...! पढ़ा है? आ..हा...! शरीर, वाणी, मन तो जड़-पर हैं। राग-दया, दान, हिंसा (का) विकल्प वह तो विकार है। परन्तु विकार बिना की यह जो पर्याय है, वह पर्याय मेरा ध्यान करती है। मैं तो ध्रुव-अनंत गुण का पिंड प्रभु ध्रुव हूँ। आ..हा..हा...!

आ..हा..हा...! पर्याय ध्यान करे तो करो! मैं तो अनंत आनंद का कंद प्रभु हूँ। आ..हा..हा...! 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' मिला है कि नहीं? आ..हा..हा...!

'(मैं) ध्यान करूँ. इस बात में; और 'मैं' ध्यान करनेवाला नहीं।) 'मैं तो ध्यान का विषय हूँ' - इस बात में ज़रा सा फेर लगता है; परन्तु है रात-दिन जितना बड़ा फेर। (एक में पर्यायदृष्टि रहती है जबकि दूसरे में द्रव्यदृष्टि होती है, इतना बड़ा फेर है)।' मैं ध्यान करनेवाला नहीं, मैं तो ध्यान का विषय हूँ। आ..हा..हा...! ध्यान करनेवाला मैं और ध्यान करने का विषय मैं - दोनों में फर्क है। ऐसा कहते हैं। एक पर्यायबुद्धि है, एक द्रव्यबुद्धि है। इतना फर्क है।

(पूज्य 'बहिनश्री के वचनामृत', बोल-३३४-३३६, प्र. १२५, दि. २०-१०-७८, ४७:०० मिनट पर)

\*\*\*

‘सोगानी’ का पुस्तक है... ‘द्रव्यदृष्टि प्रकाश’ ! (उनमें) बहुत शक्ति थी। आत्मज्ञान हुआ था। यहीं... इसी गाँव में...! पहले साधु-बावा का बहुत परिचय किया था। यम, नियम, ध्यान... (सब किया था)। फिर यहाँ आये (तो हमने) इतना कहा - ‘भैया! ये विकल्प ऊठता है न! राग! चाहे तो दया, दान का हो! ये सब राग से अंदर प्रभु भिन्न है !’ ऐसा कहा और ध्यान में बैठे! अंदर में घोलन करते.. करते... करते... राग से भिन्न चैतन्य का अनुभव यहाँ समिति में हुआ था। बाद में सारी जिंदगी बहुत अच्छे संस्कार लेकर स्वर्ग में चले गये! आहा..हा...! बहुत शक्ति थी! ‘द्रव्यदृष्टि प्रकाश’ है न! उसमें बहुत है! ...वहाँ से (स्वर्ग से) निकलकर बाद में दूसरे भव में केवलज्ञान पाकर मोक्ष हो जायेगा! ...वहाँ स्वर्ग में भी आत्मा में ठरते हैं। परंतु थोड़ा राग है तो मनुष्यभय पाकर, केवलज्ञान पाकर, राग का नाश होकर मुक्ति होगी !!

(श्री ‘समयसार कलश टीका’ कलश-२१६, दि. २५-२-७८, प्रवचन नं. २४१)

## पूज्य बहिनश्री के श्रीमुख से प्रवाहित पूज्य श्री सोगानीजी सम्बन्धित हृदयोद्गार

‘निहालभाई’ की कथन शैली में भाषा कड़क है परंतु वस्तुस्थिति तो बराबर कही है। वे कैसे दिखते थे, किसीको खास परिचय नहीं था और बोलते भी कम थे इसलिये दूसरों को बाहर से खयाल नहीं आवे। उनकी अंतर की परिणति निराली थी। जीव के अंतरंग परिणामों को बाहर से नहीं नापा जा सकता। उन्होंने वस्तुस्थिति सत्य कही है। मार्ग सत्य कहा है जिसे ग्रहण करना चाहिये।

‘द्रव्यदृष्टि प्रकाश’ में कहा है न...! ‘पर्याय मेरा ध्यान करो तो करो, मैं किसका ध्यान करूँ?’ यह ठीक कहा है। द्रव्य को कहाँ ध्यान करना है? वास्तविक स्थिति वस्तु की यही है, जैसी है वैसी कहते हैं। किसीको भाषा कड़क लगे तो क्या हुआ? अंतरंग परिणति तो निराली ही थी।

\*\*\*

प्रश्न :- ‘द्रव्यदृष्टि प्रकाश’ में अपरिणामी... अपरिणामी... यह शब्द बारम्बार आता है तो उसमें क्या कहना चाहते हैं?

उत्तर :- उन्हें परिणामी कहकर ‘पूरा ज्ञायक’ ऐसा कहना है। कहने का प्रकार सबका अलग-अलग होता है। ‘समयसार’ में ‘अखंड ज्ञायक’ कहा उसीको यहाँ ‘अपरिणामी’ कहा है। यह गुण है, यह पर्याय है ऐसे भेद में क्यों अटकता है? अभेद में जा, भेद में मत अटक। यदि भेद में अटक गया तो अभेद में नहीं जा सकेगा। अतः अपरिणामी का लक्ष कर। वहाँ स्थिर हो जा! वहाँ प्रसर जा! अपरिणामी मतलब कूटस्थ नहीं, परिणमन तो होता रहेगा परंतु तू निष्क्रिय पर दृष्टि दे! अभेद का जोर प्रगट कर!

जैसे समुद्र की तरंग को न देखकर सतह पर दृष्टि दे। तरंग तो उछलते ही रहेंगे उसके सामने क्यों देखते हो? वैसे अनंतगुणों की एकरूप सतह जो ध्रुव - अपरिणामी स्थिर द्रव्य है वह दृष्टि को स्थापित कर! परिणमन तो चलता ही रहेगा। परिणाम गौण हो जाते हैं, शून्य नहीं हो जाते हैं। अतः ‘अपरिणामी’ पर दृष्टि

दे ऐसा कहा है।

‘नियमसार’ में पारिणामिकभाव पर दृष्टि दे ऐसा आता है उसीको यहाँ ‘अपरिणामी’ कहा है। उन्हें ‘अपरिणामी’ की धून थी इसलिये वह शब्द आया है। निष्क्रिय का मतलब भी अपरिणामी है। ‘समयसार’ में ‘ज्ञायक’ पर दृष्टि देने से परिणाम नहीं दिखते। ज्ञायक कहो, पारिणामिकभाव कहो, चाहे अपरिणामी कहो सब एकार्थ ही है। ‘पूज्य गुरुदेवश्री’ को भी ज्ञायक की धून बहुत थी। मैं भी सबको यही कहती हूँ कि ज्ञायक को पहचानो। (दि. ३-१२-७५)

**करुणामूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई के श्रीमुख से प्रवाहित  
पूज्य श्री सोगानीजी सम्बन्धित हृदयोद्गार**

... (‘परमागमसार’ के) २६५ (नंबर के) बोल में आश्रय का प्रकार और आश्रय क्या चीज है वह आश्रय के साथ पारमार्थिक विषय किस प्रकार प्ररूपित होता है, प्रतिपादित होता है, यह बात ली है। बहुत मुद्दे की बात है। जैनदर्शन का सर्वोत्कृष्ट विषय है !! ...यहाँ जो न्याय है वह न्याय है तो अलौकिक है! ऐसा कहीं है नहीं।

‘सोगानीजी’ की कथनशैली में यह मुख्य विषय था। उनके पत्र पहले-पहले देखे, उनके परिचय के पहले देखे थे, परिचय तो बाद में हुआ। पत्र तो पहले पढ़े थे। तब यह विचार आया था कि, जैनदर्शन का सर्वोत्कृष्ट तत्त्वज्ञान का विषय इन पत्रों में है! तब गुरुदेवश्री का विचार आया था कि, ओ..हो...! गुरुदेवश्री को सुनकर लोग इतना तत्त्व पकड़ सकते हैं!! क्योंकि ये सम्यक्दृष्टि है कि नहीं यह तो परिचय बिना नक्की नहीं हो सकता था। प्रश्न यह चला कि, सम्यक्दृष्टि है क्या? कैसे पता चले? मिलना पड़े, मिले बगैर कैसे पता चले? परिचय के बिना कैसे पता चले? परन्तु पत्रों का विषय तो जैनदर्शन का सर्वोत्कृष्ट विषय है, इसमें कोई संशय नहीं। उस वक्त गुरुदेवश्री की महिमा विशेषरूप से आयी थी। (क्योंकि) मेरा तो वह प्रवेशकाल था। संवत्-२०१५ की साल में शायद पत्र पढ़े होंगे, २०१४ की साल में ठीक-ठीक प्रवेश हुआ था। तब ऐसा लगा कि, ओ..हो...! यहाँ आनेवाले जीवों में... गुरुदेवश्री की महिमा तो पहले से थी परन्तु विशेष महिमा आयी कि, यहाँ आनेवाले जीवों में ऐसा-ऐसा प्रकार है कि, ऐसे गूढ़ विषय को पत्रों में भी लिख सकते हैं!! तत्त्वज्ञान की प्रसिद्धि कितनी हद तक हुई है कि, ऐसे गूढ़ विषय को पत्रों में भी लिख सकते हैं!! ऐसा विचार आया था।

हालकि सब लोग इतनी हद तक नहीं होते परन्तु उस वक्त तो नये-नये थे तब कैसे पता चले कि, इसमें कौन, कितने, कैसे हैं? उनको (‘सोगानीजी’ को) भी ऐसा ही लगा था! खद यह आते ही अनुभव में आये तब उनको भी लगा था कि, मुझे प्रवेश के साथ ही ऐसा अन्भव हो गया तो यहाँ तो कई सारे रहते हैं, तो कइयों को ऐसा अनुभव होगा! गुरुदेवश्री का परिचय तो सेंकड़ों, हजारों लोग करते हैं, जबकि मैं तो नया-नया हूँ, बहुतों को पुराना परिचय है। आदमी तो अपनी दृष्टि से ही विचार करेगा न! जो भी नाप आयेगा वह तो अपने ऊपर से ही आयेगा न!

(‘परमागमसार’ बोल-२६५, दि. ६-६-८३ के प्रवचनमें से, ४०:०० मिनट पर)

**पूज्य बहिनश्री की वीडियो तत्वचर्चा**  
**मंगल वाणी-सी.डी. १२-A**

(२८:५० मिनट से..)

मुमुक्षु :- जैसे कपड़े के बिना गहने शोभते नहीं, इसप्रकार नीति के बिना धर्म शोभता नहीं। माताजी! इस वचनामृत में कृपालु गुरुदेव लौकिक नीति और लोकोत्तर नीति की और व्यवहार एवं निश्चय की बात करते हैं। कृपया समझाइये।



समाधान :- गुरुदेव सब नीति की बात करते हैं। लौकिक और लोकोत्तर सब नीति। व्यवहार भी उसका नीतियुक्त होना चाहिये। उसकी पात्रता वैसी होनी चाहिये। उसे धर्म की रुचि लगे, धर्म जिसे प्रगट हो अथवा धर्म की रुचि हो उसे लौकिक नीति भी होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- लौकिक नीति में क्या लेना?

समाधान :- उसका व्यवहार.. उसका बाह्य आचरण ऐसा नहीं होना चाहिये कि उसे अनीति नहीं होनी चाहिये, झूठ बोलना, गलत व्यापार आदि अनेक प्रकार का होता है।

कपट, गृद्धि आदि अनेक प्रकार की (अनीति नहीं होती)। बाहर का सब रस फ्रीका पड़ जाये। बाहर की सब नीति बराबर होती है। जिसे आत्मा की रुचि लगे उसे सब रस फ्रीका पड़ जाता है। उसका जीवन नीतिमय हो जाता है। आता है न? सप्त व्यसन नहीं होने चाहिये, वह सब आता है। अमुक प्रकार का आहार नहीं होना चाहिये, ऐसा आता है। शास्त्र में आता है, गुरुदेव बहुत बार कहते थे। उसके व्यवहार में तो वह आ जाता है। आत्मा की रुचि लगी और रस फ्रीका पड़ जाये वैसा आहार ले, त्रस आदि न हो, लौकिक नीति होती है, असत्य नहीं होता, गृद्धि नहीं होती, ऐसा सब होता है। जिसे अंतर आत्मा की रुचि लगी हो उसे।

मुमुक्षु :- गलत व्यापार-धंधा नहीं।

समाधान :- व्यापार-धंधा आदि सब उसमें आ जाता है।

मुमुक्षु :- यह हो वहाँ धर्म शोभता है।

समाधान :- ऐसा हो तो ही धर्म शोभता है। तो ही उसे धर्म की रुचि लगे, तो धर्म शोभता है। धर्म की रुचि हो उसे वैसा होना ही नहीं चाहिये।

मुमुक्षु :- आहार की बात अलग है, परन्तु व्यापार में कोई ऐसी चीज बाज़ारसे लाकर बेचने में तो कोई दिक्कत नहीं है न?

समाधान :- जिसे खाना नहीं है उसे बेचना भी नहीं होता। जिसे आत्मा की रुचि लगी हो उसे वैसा भी नहीं होता, कुछ नहीं होता। ऐसा होता है कभी कि जो खुद के लिये नहीं हो, वह दूसरे को बेचे? ऐसा नहीं होता। आजीविका के लिये वैसा व्यापार नहीं होता। आजीविका पुण्य अनुसार चलती है, पाप करके आजीविका करनी वैसा कुछ आत्मार्थी को होता नहीं।

मुमुक्षु :- माताजी! सरकार का कुछ कायदा ऐसा है कि उसका कर चुकाये बिना पैसा इकट्ठा नहीं होता, वह अनीति में आता है या नहीं?

समाधान :- उतनी लंबी बात कहाँ करनी।

मुमुक्षु :- माताजी! श्रीमद्जी में दूसरा एक वचन आता है कि आत्मा सबसे अत्यन्त प्रत्यक्ष है, ऐसा परमपुरुषने किया हुआ निर्णय भी अत्यन्त प्रत्यक्ष है, इसमें क्या कहना चाहते हैं?

समाधान :- आत्मा..?

मुमुक्षु :- आत्मा सबसे अत्यन्त प्रत्यक्ष है।

समाधान :- आत्मा ही सबसे प्रत्यक्ष है। आत्मा को तू देख तो सही, तेरा आत्मा प्रत्यक्ष ही है। सबसे प्रत्यक्ष आत्मा ही है। तुझे यह सब बाहर का प्रत्यक्ष लगता है कि यह सब मुझे प्रत्यक्ष है, बाह्य द्रव्य सब प्रत्यक्ष है। नेत्रसे दिखाई दे वह सब तुझे प्रत्यक्ष लगता है। वास्तव में तो आत्मा ही प्रत्यक्ष है। क्योंकि तू स्वयं ही आत्मा है और ज्ञानस्वरूप आत्मा तू स्वयं ही है। इसलिये सबसे प्रत्यक्ष है तो आत्मा ही प्रत्यक्ष है। ऐसा परमपुरुषने किया हुआ निश्चय वह प्रत्यक्ष है, ऐसा है?

वह अत्यन्त प्रत्यक्ष है। परम पुरुषोंने जो निश्चय किया कि आत्मा सबसे प्रत्यक्ष है, अत्यन्त प्रत्यक्ष है। और वह बराबर है कि सबसे प्रत्यक्ष हो तो एक आत्मा ही है। क्योंकि स्वयं ही है और खुद के समीप है, समीप नहीं परन्तु स्वयं ही है। इसलिये आत्मा अनुभूति में आ सके ऐसा है। इसलिये सबसे प्रत्यक्ष हो तो आत्मा ही है। यह सब तो परद्रव्य है, तुझे प्रत्यक्ष लगता है, ये नेत्रसे दिखाई दे वह सब तो दूर है। तू उसे पूर्णरूपसे जान नहीं सकता। जो आत्मा को नहीं जानता वह पर को भी नहीं जानता। जो आत्मा को जाने वही वास्तव में पर को यथार्थरूपसे जानता है। इसलिये तू तुझे नहीं जानता है तो दूसरों को भी जान नहीं सकता। मात्र स्थूलपने जाना और देखा ऐसा तुझे लगता है। बाकी तो आत्मा प्रत्यक्ष है, तू उसे जान और देख। सबसे प्रत्यक्ष हो तो एक आत्मा स्पष्ट प्रत्यक्ष है।

मुमुक्षु :- खुद ही होनेसे स्वयं को प्रत्यक्ष ही है।

समाधान :- स्वयं ही होनेसे स्वयं को प्रत्यक्ष ही है।

मुमुक्षु :- जिसे अनुभूति है उसे प्रत्यक्ष है।

समाधान :- अनुभूति हुई उसे तो प्रत्यक्ष है, क्योंकि वेदन में आया। परन्तु अनुभूति नहीं हुई हो तो भी उसे जो गुरु और आचार्य कहते हैं कि तुझे प्रत्यक्ष है। ऐसा उसे लगता नहीं है, भूल गया है। परन्तु स्वभावसे प्रत्यक्ष है। और अनुभूतिसे प्रत्यक्ष है। परन्तु दूसरों को स्वभावसे प्रत्यक्ष है। उसका स्वभाव प्रत्यक्ष है। परन्तु वह भूल गया है इसलिये प्रत्यक्ष नहीं लगता है। भूल गया है, आत्मा को कहाँ खोजना? बाहर में खोजता है। पुद्गल में खोजता है, चारों ओर खोजता है, अन्दर विभाव में खोजता है, शरीर में, कहीं भी आत्मा दिखाई नहीं देता। स्वयं को भूल गया है। स्वभावसे प्रत्यक्ष है।

मुमुक्षु :- इन्द्रियसे तो प्रत्यक्ष नहीं होता।

समाधान :- इन्द्रियोंसे नहीं होता, परन्तु स्वभावसे-ज्ञानसे प्रत्यक्ष है। ज्ञान प्रगट कर तो ज्ञानसे प्रत्यक्ष है। उसका स्वभाव ही प्रत्यक्ष है, लेकिन तुझे दिखाई नहीं देता, तू भूल गया है। तेरी नज़र बाहर गयी है।

मुमुक्षु :- ऐसा आता है, सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय, वह प्रत्यक्ष कहा यानी स्वभावसे प्रत्यक्ष?

समाधान :- स्वभावसे प्रत्यक्ष। सकल निरावरण अखण्ड प्रत्यक्ष है। परमपारिणामिकभाव स्वरूप स्वयं प्रत्यक्ष है। अनादिअनन्त स्वभावरूप, परमपारिणामिकभावरूप प्रत्यक्ष। अनादिअनन्त। गुप्त नहीं है, किसीने उसे गुप्त नहीं

किया, गुप्त नहीं है, कहीं दब नहीं गया, परन्तु स्वयं का उपयोग बाहर गया इसलिये मानो गुप्त हो गया, कुछ दिखाई नहीं देता। ऐसा उसे हो गया है। परमपारिणामिकभावस्वरूप अनादिअनन्त सकल प्रत्यक्ष निरावरण है। ऐसा आत्मा है।

(३७:५० मिनट तक..)

\*\*\*

(पूज्य गुरुदेवश्री प्रवचन...)

वही सच्चा मित्र है, जो संसार के दुःख से छुड़ाकर निर्वाण में पहुँचा देता है।' लो, आत्मानुशासन का उद्धारण दिया है। 'शान्तभाव, ज्ञान, चारित्र, तप का मूल्य कंकर-पाषाण के समान है...' सम्यग्दर्शन के बिना शान्तभाव, ज्ञान हो... 'बोधवृत्तपसां पाषाणस्येव गौरवं पुंसः' आहा...हा...! आचार्य ने क्या बात की है! 'कंकर-पत्थर समान सम्यग्दर्शन के बिना तुच्छ है, यदि सम्यक्त्वसहित हो तो उनका मूल्य महान रत्न समान हो जाता है।' सम्यक्ज्ञान आदि यथार्थ हो गये। कीमत सम्यग्दर्शन की है, समझ में आया? वह मुख्य है, वह पण्डित है, वह सर्वस्व है, वह स्वभावसन्मुख की गति करने में सम्यग्दर्शन मुखिया है। पर से विमुख और स्व से सन्मुख... यह सम्यग्दर्शन मुख्य है। सम्यग्दर्शन जैसी कोई चीज जगत में महिमावाली नहीं है। केवलज्ञान, चारित्र की बात क्या करना परन्तु यह तो पहली चीज में सम्यग्दर्शन की इतनी महिमा की है। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**पूज्य भाईश्री शशीभाईजी के प्रवचन अब You tube पर**

परम उपकारी पूज्य भाईश्री शशीभाईजी के प्रकाशित पुस्तकों के प्रवचन गुजराती एवं हिन्दी भाषा के Subtitle साथ अब देखिये। You tube में Satshrut prabhavna channel पर जाकर यह प्रवचन सुन सकते हो। यह प्रवचन पूर्ण होने के बाद राज-हृदय, कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी के ग्रन्थ पर हुए प्रवचनों का प्रारम्भ किया जायेगा। हर रविवार सुबह ११ बजे इन प्रवचनों का जीवंत प्रसारण होता है, जिसका सर्व मुमुक्षुओं को लाभ लेने की विनती। Channel को Subscribe करने से आगामी प्रसारित प्रवचन का Notification स्वयं ही प्राप्त हो जायेगा।

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (मई-२०२२) का शुल्क एक मुमुक्षु, अमेरिका के नाम से साभार प्राप्त हुआ है। जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।



द्रव्यदृष्टि प्रकाशमें से, पूज्य श्री निहालचंद्रजी  
सोगानीजी के चयन किये गये वचनामृत

आत्मा किस तरह प्राप्त होवे?

अपने त्रिकाली अस्तित्व में अपनापन होनेसे पर्यायबुद्धि छूट जाती है। २५.

\*\*\*

प्रश्न :- शुरुआतवाले को अनुभव के लिए कैसे प्रयत्न करना?

उत्तर :- 'मैं परिणाम मात्र नहीं हूँ'; त्रिकाली-ध्रुवपने में अपनापन थाप देना (स्थापित करना) यही उपाय है। (अनादि पर्यायबुद्धि सहित मुमुक्षु जीव उपदेशबोध के अनुसार अपनी भूमिका योग्य परिणाम से प्रारंभ करता है, परंतु सर्व प्रथम पर्यायमें से अस्तित्व उठा करके द्रव्यस्वभाव में अस्तित्व स्थापित करना है-ऐसा लक्ष्य प्रारंभ से ही रहना अत्यावश्यक है, वरना पर्यायबुद्धि दृढ़ हो जानेसे द्रव्यदृष्टि उत्पन्न होनी मुश्किल हो जाती है, और मुमुक्षुता में ही मनुष्य आयु पूर्ण हो जाती है और भवभ्रमण का छेद नहीं होता।) ७०.

\*\*\*

प्रश्न :- शुरुआतवाला विचार में बैठता है तो 'मैं ऐसा हूँ, मैं ऐसा हूँ'-ऐसा करता है, तो घण्टा-आधा घण्टा में थकान लगती है, सो क्यों?

उत्तर :- विकल्प में तो थकान लगे ही न! 'मैं ऐसा हूँ'-ऐसा अनुभव करने में शांति है।

८९.

\*\*\*

एक ही 'मास्टर की'-(Master key) है; सब बातों में-सभी शास्त्रों में एक ही सार है-'त्रिकालीपने में अपनापन जोड़ देना'। ९०.

\*\*\*

(आत्मप्राप्ति कैसे होवे?-इस विषय में जिज्ञासापूर्वक पूछे गये प्रश्न का विस्तृत उत्तर:-)  
रुचि में खरेखर अपनी ज़रूरत लगे तब अपनी वस्तु की प्राप्ति हुए बिना नहीं रहती। चौबीसों घण्टों चिंतन में-बेचिंतन में एक यही (स्वरूप का घोलन) चलता रहे। जिस विषय की रुचि होती है, वह विषय सैकड़ों बाह्य कार्य करते हुए भी चलता ही रहता है। बाहर का उपयोग तो ऊपरी-ऊपरी तौर से चलता है, उसमें जाग्रति नहीं रहती; जिस विषय की रुचि है उसी में जाग्रति रहती है। सैकड़ों कार्य करते रहने पर भी सभी की गौणता ही रहा करती है; मात्र रुचि का विषय ही सदा मुख्य रहता है।



विकल्पात्मक विचार में भी 'शरीराकार चैतन्यमूर्ति' को टाँक दो... 'मैं तो यही हूँ'। सुख-दुःख की जो कोई पर्याय हो, उसकी उपेक्षा रखो। 'मैं तो यही हूँ'-विचार चले, उसकी भी गौणता रखो। 'मैं तो वैसा का वैसा ही चैतन्यमूर्ति हूँ'-बस! यही दृढ़ता करते रहो।

सुनना, शास्त्र पढ़ना आदि सभी की गौणता होनी चाहिए; एकांत का ज्यादा अभ्यास रहना चाहिए (ताकि स्वरूपघोलन बढ़े।)

यह (सम्यक्त्व) प्राप्त नहीं हुआ तो जीव निगोद में चला जाएगा-ऐसे निगोद के भय से, अपना कार्य करना चाहे तो वो यथार्थ नहीं। परंतु (अभिप्राय में) निगोद की अवस्था हो या सिद्ध की, 'मेरा तो कुछ भी बिगाड़-सुधार नहीं' ('मैं अवस्थारूप नहीं')-'ऐसी मैं अचलित वस्तु हूँ'-ऐसी श्रद्धा जम जानी चाहिए। पर्याय कैसी भी हो उसकी उपेक्षा ही रहनी चाहिए।

'परद्रव्य के साथ मैं तो कुछ भी संबंध ही नहीं' ऐसा तो पक्ष होना चाहिए; बाद में वस्तु (त्रिकाली ध्रुव) और परिणाम (उत्पाद-व्यय) इन दो के विचार में ही सब समय लगा देना है।

चौबीसों घण्टों... बस यही (स्वरूप का घूँटण) चलना चाहिए। प्रवृत्तिभाव को गौण करके इस एक ही की मुख्यता चलनी चाहिए-यही प्रयास निरंतर चलना चाहिए। २५०.

\*\*\*

प्रश्न :- आत्मा तो दिखता नहीं, तो प्रत्यक्ष कैसे होवे?

उत्तर :- परिणाम तो दिखता है न! तो परिणाम जिसमें से आता है... उस (अनंत प्रत्यक्ष) चीज का पहले अनुमान किया जाता है, फिर (वेदन से) प्रत्यक्ष करना। ५०६.

\*\*\*

वेदनासमुद्घात में जीव के प्रदेश शरीर से बाहर निकल जाते हैं। और शरीर के बाहर वेदन आता है; तो कोई जीव, इस पर से भी शरीर से (आत्मा के) भिन्नपने के विचार में उतरकर काम कर सकता है। ५६८.

\*\*\*

(श्रीमद् राजचंद्र पत्र)

आये, अपने गुणोंकी उत्कृष्टता सहन करनेमें आये तो ही इस संसारमें रहना योग्य है, दूसरी तरहसे नहीं।

वि. रायचंदके यथायोग्य।

२९९

ववाणिया, कार्तिक सुदी ७, रवि ,१९४८  
चाहे जिस क्रिया, जप, तप अथवा शास्त्राध्ययन  
करके भी एक ही कार्य सिद्ध करना है, वह यह कि  
जगतकी विस्मृति करना और सत्के चरणमें रहना।

और इस एक ही लक्ष्यमें प्रवृत्ति करनेसे, जीवको  
स्वयं क्या करना योग्य है, और क्या करना अयोग्य  
है वह समझमें आता है, समझमें आता रहता है।

यह लक्ष्य सन्मुख हुए बिना जप, तप, ध्यान या दान किसीकी यथायोग्य सिद्धि नहीं है;  
और तब तक ध्यान आदि अनुपयोगी जैसे हैं।

इसलिये इनमेंसे जो जो साधन हो सकते हों वे सब एक लक्ष्य सिद्ध होनेके लिये करें  
कि जिस लक्ष्यको हमने ऊपर बताया है। जप, तप, आदि कुछ निषेध करने योग्य नहीं है,  
तथापि वे सब एक लक्ष्यके लिये हैं; और उस लक्ष्यके बिना जीवको सम्यक्त्वसिद्धि नहीं होती।

अधिक क्या कहें? जो ऊपर कहा है उतना ही समझनेके लिये सभी शास्त्र प्रतिपादित  
हुए हैं।

\*\*\*

३००

ववाणिया, कार्तिक सुदी ८, सोम, १९४८

दो दिन पहले पत्र प्राप्त हुआ है। साथके चारों पत्र पढ़े हैं।

मगनलाल, कीलाभाई, खुशालभाई इत्यादिकी आणंद आनेकी इच्छा है, तो वैसा करनेमें कोई  
बाधा नहीं है। तथापि इस बातसे दूसरे मनुष्योंको हमारी प्रसिद्धिका पता चलता है कि इनके  
समागम के लिये अमुक लोग जाते हैं, यह यथासंभव कम प्रसिद्धिमें आना चाहिये। वैसी प्रसिद्धि  
अभी हमें प्रतिबंधरूप होती है।

कीलाभाईको सुचित करें कि आपने पत्रेच्छा की परंतु उससे कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं हो  
सकेगा। कुछ पूछनेकी इच्छा हो तो वे आणंदमें हर्षपूर्वक पूछें।

\*\*\*

३०१

ॐ

ववाणिया, कार्तिक सुदी ८, सोम, १९४८

स्मरणीय मूर्ति श्री सुभाग्य,

जगत आत्मरूप माननेमें आये, जो हो वह योग्य ही माननेमें आये, परके दोष देखनेमें न  
(पत्र का शेष अंश पृष्ठ-१८ पर...)

